IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

प्रगतिशील कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति का आलम्बन एवं उद्दीपन रूपों में चित्रण

राकेश कुमार वर्मा[1], डॉ. शक्तिदान चारण[2]

श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय

रिसर्च स्कोलर[1] व शोध निर्देषक[2]

प्रकृति मानव की आदि सहचरी है और अनादिकाल से ही कवि समुदाय प्रकृति से काव्य–सृजन की प्रेरणा लेते रहें हैं। इतिहास साक्षी है कि भारतीय साहित्य के महान कवियों जैसे वाल्मीकि, व्यास, कालीदास आदि की अमर वाणी में प्रकृति वर्णन ने महत्वपूर्ण स्थान पाया है। ये कवि कभी प्रकृति के निर्मल सौंदर्य पर मुग्ध हुए तो कभी प्रकृति के उपयोगितावाद की तरफ इनका ध्यान गया। यह सिलसिला सदियों से साहित्य में अनवरत विद्यमान रहा और आधुनिक काल में भी कवि प्रकृति से सर्जनात्मक सामग्री ग्रहण करते हैं।

हिन्दी के आधुनिक काल के काव्य में विविध धाराओं एवं प्रवृत्तियों का उद्‌भव एवं ह्रास समय के साथ होता रहा है। आरंभिक रचनाओं में प्रकृति का चित्रण कथानक को बिम्ब रूप देने के लिए सामान्यतया प्रयुक्त किया जाता था जो मध्यकाल की युद्धरत अवस्थाओं के चित्रण के समय बदल गया। आधुनिक काल के आरंभ में उत्तर–मध्यकालीन काव्य–षैलियों का प्रभाव रहा पर उसके बाद वैष्विक स्तर पर हुए साहित्यिक आदान–प्रदान के कारण भारत में भी काव्य सृजन में गुणात्मक परिवर्तन आया। भारत में इसी वैष्विक प्रभाव के कारण 1930 के बाद प्रगतिषील साहित्य आंदोलन से प्रेरित रचनाओं का सृजन होने लगा। यहां यह गौरतलब है कि इस समय भारत में छायावादी काव्य–प्रवृत्ति का जोर था। इधर प्रगतिषील साहित्य का प्रभाव बढ़ने के बाद छायावादी काव्य धीरे–धीरे अवसान की ओर जाता रहा। हालांकि छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति प्रकृति चित्रण को प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविताओं में स्थान अवष्य दिया। इस चित्रण में छायावादी काव्य की भांति प्रकृति के कोमल एवं मनोहारी दृष्यों के

सहारे भाव अंकन करना नहीं था, अपितु प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति को मानव जीवन पर गहरा प्रभाव छोड़ने वाली सहचरी शक्ति के रूप में स्वीकार किया। इन कवियों में प्रमुख कवि केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति के विविध रूपों का यथार्थ और सुंदर रेखांकन किया गया है।

कवि केदारनाथ अग्रवाल उत्तरप्रदेष के बांदा जिले के कमासिन गांव के रहने वाले थे। ग्रामीण परिवेष में जाये–जन्मे होने के कारण उनका प्रकृति से लगाव गहरा ही था। वे प्रकृति में प्रत्येक तत्व से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से गहरा सम्बन्ध रखते थे। केदार के काव्य में ग्रामीण संवेदना, भावनाएं एवं प्राकृतिक सौंदर्य का सजीव चित्रण मिलता है। वे नदी से लेकर सूरज–संध्या आदि का जीवंत चित्रण करने में निष्णात हैं और उनके काव्य में खेत–खलिहानों का वास्तविक उल्लास और फसलों का मनोहारी चित्रण किया गया है। उनकी रचनाओं में मानव एवं प्रकृति के सौंदर्य का सहज, वेगवान तथा उन्मुक्त रूप मिलता है। हालांकि उनकी शुरूआती रचनाओं में छायावाद का प्रभाव दिखता है।

प्रकृति के प्रति केदार का झुकाव स्वाभाविक रूप से रहा है। उन्हें प्रकृति अपनी तरफ आकृष्ट करती रही है, उनको कभी प्रकृति के नैसर्गिक सौंदर्य ने अपनी ओर खींचा है, तो कभी मानव–जीवन के हर्ष–विषाद को रूपायित करने के लिए केदार ने प्रकृति के उपदानों का प्रयोग किया है। मानव–जीवन की पृष्ठभूमि को केन्द्र में रखते हुए केदार ने प्रकृति के अधिकांष चित्र खींचे हैं।केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति को नवीन तरीके से अभिव्यक्ति मिली है। प्रकृति के प्रति केदार का दृष्टिबोध पूर्व की हिंदी कविता से किंचित भिन्न और नवीनता लिए हुए है।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति–चित्रण विराट पृष्ठभूमि के साथ एवं विविध रूपों में उकेरा गया है। केदार का प्रारंभिक रूप प्रकृति कवि के रूप में सामने आता है और 'युग की गंगा' से लेकर 'कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह' कविता–संग्रहों में उनकी अधिकतर कविताएं विषय की दृष्टि से प्रकृतिपरक हैं। उनके कविता संकलनों में चौदह के शीर्षक प्राकृतिक सौंदर्य व उसके उपकरणों के आधार पर रखे गए हैं। उदाहरणार्थ 'युग की गंगा', 'नींद के बादल', 'लोक और आलोक', 'फूल नहीं रंग बोलते हैं', 'गुलमेंहदी', 'आग का आइना', 'पंख और पतवार', 'जमुन जल तुम', 'अनहारी हरियाली', 'पुष्पदीप', 'वसंत में प्रसन्न हुई पृथ्वी', 'कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह' आदि काव्य–संग्रहों के नामकरण प्रकृति से कहीं न कहीं परोक्ष रूप से जुड़े हैं।

प्रकृति चित्रण करते समय केदार किसी खास शैली से बंधे हुए नहीं रहे और उन्होंने इस चित्रण में परम्परागत और सामयिक शैली का उत्कृष्ट संतुलन स्थापित किया है। आधुनिक काल की कविताओं में प्रकृति चित्रण की कई शैलियां प्रचलित हैं, जिनमें से केदारनाथ अग्रवाल ने मुख्यतः इन शैलियों का अपनाया है – आलम्बन रूप में प्रकृति चित्रण, उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण, वातावरण निर्माण के रूप में प्रकृति चित्रण, रहस्यात्मक रूप में प्रकृति चित्रण, प्रतीकात्मक रूप में प्रकृति चित्रण और मानवीकरण रूप

में प्रकृति चित्रण। उनके द्वारा चित्रित प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण की संक्षिप्त विवेचना इस प्रकार है –

आलम्बन रूप

प्रकृति का यथातथ्य रूप में चित्रण करना प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण कहा जाता है। इसका व्यापक अर्थ है कि जब प्रकृति के समस्त पदार्थ कवि के रतिभाव के स्वतंत्र आधार का रूप ग्रहण करके उसकी अंतःसत्ता पर सम्पूर्ण प्रभाव स्थापित कर लेते हैं तो काव्य का यह रूप प्रतिष्ठित होता है। प्रकृति के आलम्बन रूपों का चित्रण करते समय कवि की निज दृष्टि प्रकृति की रूप राषि में समाहित हो जाती है। केदार ने प्रकृति को आलम्बन रूप में अनुभूत करके अपने काव्य में प्रकृति के संष्लिष्ट और भव्य चित्र उकेरे हैं, जिनमें प्रकृति अपने मनोहारी रूप में दृष्टिगोचर होती है। 'चंद्रगहना से लौटती बेर' शीर्षक कविता में कवि ने ग्रामीण कृषक जीवन की सुंदर एवं सजीव अभिव्यक्ति दी है। कवि को पीली सरसों हाथ पीले किए हुए मंडप में पधारी नवविवाहिता की तरह प्रतीत हो रही है –

'देख आया चंद्रगहना
देखता हूं दृष्य,
अब मैं मेड़ पर
इस खेत की बैठा अकेला,
एक बीते के बराबर यह हरा ठिंगना चना
बांधे मुरैठा शीष पर छोटे गुलाबी फूल का,
सजकर खड़ा है।'[1]

केदार प्रकृति के सूक्ष्म मानसिक सौंदर्य के स्थान पर उसे व्यवहारिक रूप से चित्रित करते हुए मानवीय स्वभाव से जोड़ते हैं। हिन्दी साहित्य की छायावादी कविता में प्रकृति चित्रण एन्द्रिय अनुभूति से अनुभूत न करते हुए काल्पनिकता के सहारे किया गया है, जबकि केदार के काव्य में प्रकृति जीवन संघर्षों में सारथी बनकर उभरी है और किसी साथी की भांति निज ज्ञान और अनुभव से प्रेरणा भी देती है। केदार के काव्य में चित्रित प्रकृति क्षणिक अनुभवजन्य नहीं है बल्कि उसमें युग का समर्पण मिलता है। उनकी एक कविता 'सावन का दृष्य' में वर्षा ऋतु में किसान के जीवन सौंदर्य का अनूठा चित्रण मिलता है–

'बेकाबू हो गई बिजलियां,
उनये बादल के परद में,
चंचल होकर ऐसा तड़पीं
कूदेंगी पृथ्वी पर जैसे।

मोती जैसी बूंदें बरसीं,
धरती पर जलधारा बरसी,
झाग भरे लाखों मटमैले
फन फैलाए अहिगन सरके।'[2]

उक्त कविता में बादल मात्र आलम्बन रूप में नहीं हैं अपितु उनका आगमन और बरसना किसानी जीवन की आस और उत्साह का भाव जगाता है। केदार प्रकृति समस्त गतिविधियों में जीवन की गतिषीलता देखते हैं। उनके काव्य में प्रकृति जीवंत शरीर की भांति उपस्थित होती है। ऐसा ही एक उदाहरण उनकी कविता 'बसंती हवा' में देखा जा सकता है जो अतुकांत शैली की होते हुए भी गीति काव्य का सा आनंद प्रदान करती है –

'हवा हूं, हवा, मैं बसंती हवा हूं।
वही हां, वही जो युगों से गगन को
बिना कष्ट–श्रम के संभाले हुए है,
हवा हूं, हवा, मैं बसंती हवा हूं।
चढ़ी पेड़ महुआ, थपाथप मचाया,
गिरी धम्म से फिर, चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा, किया कान में 'कूं',
उतरकर भगी मैं हरे खेत पहुंची –
वहां गेहुंओं में लहर खूब मारी,
पहर दो पहर क्या, अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं।
खड़ी देख अलसी, लिए षिष कलसी,
मुझे खूब सूझी!
हिलाया–झुलाय, गिरी पर न कलसी!
इसी हार को पा
हिलायी न सरसों,
झुलाई न सरसों,
मजा आ गया तब,
न सुध–बुध रही कुछ,
बसंती नवेली भरे गात में थी!

हवा हूं, हवा, मैं बसंती हवा हूं।
हंसी जोर से मैं, हंसी सब दिषाएं
हंसे लहलहाते हरे खेत सारे,
हंसी चमचमाती भरी धूप प्यारी,
बसंती हवा में हंसी सारी सृष्टि सारी!
हवा हूं, हवा, मैं बसंती हवा हूं!'[3]

उनके काव्य में 'हवा' अनेक रूपों में उपस्थित हुई है। वह कभी स्वछंद रूप में, तो कभी वेगवान अंधड़ के रूप में आई है। कवि हवा की सुंदरता और कमनीयता से प्रभावित हैं तो दूसरी ओर उसकी असीम शक्ति से भी अवगत हैं। प्रकृति का भीषण रूप भी कवि की दृष्टि में मानवीय–षक्ति संचय करने में प्रेरणा प्रदान करने का कार्य करता है–

'मैं घोड़ों की दौड़
वनों के सिर पर तड़–तड़ दौड़ा,
पेड़ बड़े से बड़ा
चिरौंटे–सा चिल्लाया चौंका
पत्तों के पर फर–फर फड़के –
उलटे, उखड़े, टूटे,
मौन अंधेरे की डालों पर
सांड़ पठारी छूटे!'[4]

कवि केदार की रंग–भावना का विस्तार और सूक्ष्मता उनके प्रकृति के प्रति अनुराग का प्रमाण है। प्रकृति को सरसरी दृष्टि से देखने वाले कवि प्रकृति के मौलिक और स्थूल रंगों का चित्रण मात्र करते हैं पर कवि केदार प्रकृति के विविध रंगों, भेदों और मिश्रणों का मूर्त वर्णन करते हैं। इन प्रकृतिवर्णनों में चित्रित रंगों में प्रकृति का रूप मानव की सहयोगिनी के रूप में उकेरा गया है। केदार के काव्य में सूर्योदय और दिन का उजाला अनेक कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है। उनकी दृष्टि में सूर्योदय जागरण और साम्यवादी क्रांति का प्रतीक है। सूर्योदय के उपरांत अंधेरा पलायन कर जाता और जीव–जगत की जड़ता समाप्त हो जाती है। कवि सूर्योदय के उपरांत इस जीवंतता को अनुभव करते हुए लिखते हैं –

'रवि–मोर सुनहरा निकला,
पर खोल सबेरा नाचा,
भू–पार कनक–गिरि पिघला,
भूगोल मही का बदला।

नवजात उजेला दौड़ा,
कण–कण बन गया रूपहला,
मधुगीत पवन ने गाया,
संगीत हुई यह धरती,
हर फूल जगा मुस्काया!'[5]

केदार ने अपने काव्य में परम्परागत प्रतीकों को नवीन अर्थबोध प्रदान किया है। पुराने प्रतीकों में धरती को माया–मोह की जननी मानकर उसके त्याग को मुक्ति और स्वर्ग प्राप्ति की संभावना के लिए आवष्यक माना गया है। वहीं कवि केदार इस धारणा को नहीं मानते। वे धरती को पालक रूप और जननी मानकर उससे सकारात्मक लगाव को आवष्यक मानते हैं। इस प्रकार प्रकृति के विविध रूपों को वर्णित करते समय उनकी प्रतीक–योजना अन्य कवियों से भिन्न कही जा सकती है। कवि रात्रि के सौंदर्य को 'चांद और चांदनी' कविता में इस प्रकार व्यक्त करते हैं –

'विष्व के
वट–वृक्ष के ऊंचे षिखर पर
चांद चढ़कर,
चाव से नीचे निरखकर,
दूध की बाहें पसारे,
मानवी मधुरा धरा को भेंटता है,
और
यौवन–यामिनी की –
चांदनी का
फूल फेनिल चूमता है।'[6]

कवि मानवीय जीवन का दुर्बल्य भलीभांति जानते हैं और उसे इन दुर्बलता के क्षणों से आषा के उजाले के मार्ग पर ले जाने के लिए वे एकमात्र मार्ग प्रकृति का सहारा मानते हैं। प्रकृति के शीतल स्पर्ष से प्रत्येक क्लांत प्राणी नवजीवन की अनुभूति करता है।यहां एक उदाहरण प्रस्तुत है –

'नदी ने बरसों
जिसे प्यार किया,
मिलन के लिए
जिसका रोज
इंतजार किया

पाकर जिसे तृप्त काम किया
अब आज
उसी की लाष लिए बहती है
विरह विलाप का
शोक संताप सहती है,
किसी से कुछ नहीं कहती
करुणाकुल छलछलाती रहती है।'[7]

यहां कवि अपने वेदना के क्षणों में प्रकृति को आश्रय के रूप में देखते हुए शरण लेता है। कवि का मानना है कि प्रकृति वेदना के क्षणों में भी सुखद है क्योंकि वह स्वयं वेदना को किसी योगी की भांति अनुभूत करते हुए विचरती है। अभिप्राय यह है कि प्रकृति के इस आलम्बन रूप में कवि को प्रकृति शीतल लेप के समान लगती है और अवसाद के क्षणों में सांत्वना देती है।

कवि प्रकृति को सहचारी मानते हुए उसे कभी मां, कभी प्रिया तो कभी पितृत्त्व के अंष के रूप में देखता है। प्रकृति के निरन्तर परिवर्तित होते रूप जैसे चांदनी को स्नेहधारा बरसाने वाली तो वर्षा में करुणा, वसंत–प्रभात में उल्लास और षिषिर संध्या में उदासी की सूचना अनुभूत करता है। इस उत्कृष्ट अनुभूति के लिए यह आवष्यक है कि कवि को प्रकृति से व्यक्तिगत प्रेम होना चाहिए। प्रकृति प्रदत्त हरियाली को देखकर कवि में जीवन का संचार सा होता है –

'धूप–छांह खाई हरियाली,
विजय पताका लिए हाथ में,
फूलों और फलों की शोभा लिए साथ में,
प्रकृति–प्रेम से मतवाली है।
यह हरियाली
मुझको प्रिय है,
यही मुझे करती है प्रमुदित,
यही मुझे रखती है जीवित।'[8]

कवि ने आदिम मानव के प्रकृति के प्रति व्यक्त भावों को किसानों की प्रकृति चेतना में पढा है और उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है –

'धीरे से पांव धरा धरती पर किरनों ने,
मिट्टी पर दौड़ गया लाल रंग तलुओं का।
छोटा सा गांव हुआ केसर की क्यारी–सा,
कच्चे घर डूब गए, कंचन के पानी में।
डालों की डोली में लज्जा के फूल खिले,
उषा की मस्ती से फूलों को चूम लिया।
गोरी ने गीतों से सरसों की गोद भरी,
भौंरों ने गोरी के गालों को चूम लिया।'[9]

इस प्रकृति चित्रण की सुंदरता का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि कवि प्रकृति के साधारण रूपों को भी लोक संस्कृति से जोड़ते हुए चित्रित करता है। इस चित्रण में जीवन का चैतन्य है, आस, प्रकाष और संस्कार विविध बिम्बों के आलोक में दमकते से लगते हैं। कवि अपनी संवेदनापरक दृष्टि से अनूठे बिम्बों की निर्मिति करते हुए ग्रामीण जीवन और भारतीय संस्कृति को काव्य में उकेरते हैं –

'ये
माटी के दिए –
मौन
जलते,
मुसकाते,
अंधकार को मार भगाते,
पावन–पर्व प्रकाष मनाते!'[10]

कवि केदार ने ऋतुओं के सौंदर्य का चित्रण अपनी कविताओं में बड़ी संजीदगी से किया है। उनके काव्य में समस्त ऋतुओं ने स्थान पाया है पर बसंत उनकी प्रिय ऋतु प्रतीत होती है, जिसके अनेकानेक चित्र विविध स्वरूपों में उन्होंने उकेरे हैं। बसंत के कमनीय वैभव को चित्रित करते हुए कवि लिखते हैं –

'यह बसंत जो
धूप, हवा, मैदान, खेत, खलिहान, बाग में
निराकार मन्मथ मंदाध–सा रात–दिवस सांसे लेता है
जानी–अनजानी सुधियों के कितने–कितने संवेदों से,
सरवर, सरिता,
लता गुल्म को, तरु–पातों को छू लेता है
और हजारों फूलों की रंगीन सुगंधित सजी डोलियां

यहां वहां चहुं ओर खोलकर मनोमोहिनी रख देता है।'[11]

बसंत के अलावा शरद ऋतु भी कवि के मन में जीवन रस पीने की उत्कंठा जगाती है। वस्तुतः शरद भी बसंत से कम मादक ऋतु नहीं होती। शरद ऋतु वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं –

'मुग्ध कमल की तरह
पांखुरी–पलकें खोले,
कंधों पर अलियों की व्याकुल
अलकें तोले,
तरल ताल से
दिवस शरद के पास बुलाते
मेरे मन में रस पीने की
प्यास जगाते!'[12]

वर्षा ऋतु समस्त कवियों के काव्य में स्थान अवष्य प्राप्त करती है। केदार भी इनमें से एक हैं। उनके काव्य में वर्षा, बादल–बिजली आदि प्रतीकों के रूप में आये हैं पर वे मात्र परम्परागत रूढ़ प्रतीक वर्णन की भांति नहीं, अपितु जीवन–जगत के भावों को व्यक्त करते हैं। केदार की अधिकांष कविताओं में प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण करते समय उसका मानवीकरण भी हुआ है। वे वर्षा ऋतु के समय मेघ गर्जन और वर्षा के दृष्य को ध्वन्यात्मक रूप से वर्णित करते हुए वर्षा को सुंदरी रूप में उकेरते हैं –

'अम्बर का छाया मेघालय
तड़–तड़–तड़–तड़
तड़का टूटा,
रोर–रोर ही,
फूटा, फैला
चपला चौंकी –
फिर–फिर चौंकी,
बाहर आकर
चम–चम चमकी,
गदगद–गदगद
गिरा दौंगरा,
पानी–पानी हुआ धरातल,
कल–कल

छल–छल

लहरा आंचल।'[13]

कवि केदारनाथ ने प्रकृति का अनेक स्थानों पर आलंबन रूप में चित्रण किया है। इसमें प्रकृति के साथ कवि हृदय का तादातम्य स्पष्ट रूप से झलकता है।

उद्दीपन रूप

प्राकृतिक सौंदर्य के अनेक रूप मानव–मन को उद्दीप्त करते हैं। विषेषतया प्रेमियों के संयोग और वियोग में उन्हें प्रकृति के विविध दृष्य मानसिक रूप से उद्दीप्त करते हैं, इसी को अनुभूत करते हुए कवि प्रकृति के रूपों को गहनता से देखते हुए सुखद या दुःखद, संयोग अथवा वियोग के क्षणों में मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करते हैं, वह प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण कहलाता है। संयोगावस्था में जो चंद्र, चंदन, समीर, उद्यान, लता, मण्डपादि नायक–नायिका के मिलन में मादकता भरते हैं, वियोग के क्षणों में यही रूप विरहावस्था की पीड़ा बढ़ाते प्रतीत होते हैं। उद्दीपन रूप में प्रकृति जड़ एवं चेतन दोनों रूपों में चित्रित की जाती है। कवि प्रकृति में चेतना का आरोपण करते हुए प्रकृति और पात्र के मध्य संवाद का विधान कर देता है, अर्थात् इस चित्रण में प्रकृति भी एक व्यक्ति के रूप में देखी जाती है।

केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप के चित्रण में संयोग एवं वियोग दोनों अवस्थाओं को प्रभावी ढंग से चित्रित किया गया है। उनके काव्य में होली, वसंत, पावस आदि ऋतुओं की प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप मिलते हैं। केदार के काव्य में प्रकृति के इन रूपों का चित्रण नायक–नायिका में काम–भाव जागृत करने के लिए नहीं, अपितु संसार की पीड़ा का अनुभव करके उस अनुभूति की वेदना को अभिव्यक्त करता है। उनके प्रकृति चित्रण में विषिष्टता यह है कि वे प्रकृति को किसी जड़ पदार्थ की भांति व्यवहृत नहीं करते, अपितु प्रकृति के सभी उपादानों में चेतनता का सजीव चित्र आंकते हैं। 'फूल नहीं रंग बोलते हैं' काव्य संग्रह में चांद–चांदनी और धरती की आंखमिचौली का यह मानवीकृत रूप इस प्रकार है–

'विष्व के वट वृक्ष के
ऊंचे षिखर पर,
चांद चढ़ कर,
चाव से नीचे निरख कर
यौवन–यामिनी की चांदनी का,
फूल फेनिल चूमता है।'[14]

'नींद के बादल' काव्य–संग्रह की कविता 'भर–भर लोचन देखूं प्यारी' में कवि ने प्रेमी हृदयों की मिलनातुरता का प्रकृति के उद्दीपन रूप के सहारे वर्णन किया है। प्रेमी प्रेयसी से मिलनाकुल है, ऐसी स्थिति में उसे समस्त प्रकृति अत्यंत सुहावनी प्रतीत हो रही है। इस मिलन उत्कंठा को चित्रित करते हुए कवि लिखते हैं –

'भर–भर लोचन देखूं प्यारी, भर–भर लोचन देखूं।
उषा देखूं, लाल गुलाबी घन का जीवन देखूं।
ओस–धुले, मधु कोष भरे फूलों का चुम्बन देखूं।'[15]

कविता के इस अंष में प्रेमी को प्रकृति के प्रत्येक कण में प्रेम के आनंद और उल्लास की अनुभूति होती है और उसकी प्रणय–भावना उद्दीप्त हो जाती है। विरहावस्था में प्रकृति के यही सुखद रूप मन में विषाद का संचार करते हैं और इससे उपजी अनुभूति का वर्णन भी विषादप्रद हो जाता है। ऐसे समय में प्रकृति का प्रत्येक कार्य–व्यापार विरही जनों को अधिक उद्दीप्त करता है। कवि नायिका के इस विरह का मार्मिक वर्णन करते हुए उनके मिलन की कामना करता है और अपने हृदय की आकुलता को इन शब्दों में अभिव्यक्त करता है –

'आह रे, यह अनमिल जीवन !
आंख के आंख पास ही पास,
एक के एक पास ही पास,
हृदय में भार, आंख में अश्रु,
ताप कर पद में है अविराम,
प्राण, पीड़ित, आकुल,
गरल–सिंचित, व्याकुल!'[16]

प्रकृति के विविध मनोहारी रूप प्रेमी हृदय में कामनाओं को जगाकर उसे और भी दुःखी कर देते हैं। पावस ऋतु में रात्रि के समय जब आकाष में काले बादल गरजकर वर्षा करते हैं तो प्रेमी हृदय में विरह की व्यथा उद्दीप्त होने लगती है। कवि लिखते हैं –

'जाग–जाग प्रेयसि में रोया!
पावस का पहने घन अंचल,
विपुल–वेदना का बरसा जल उफ!
मैंने रजनी–कमल का
ताग–ताग प्रतिवार भिगोया,
जाग–जाग प्रेयसि मैं रोया।'[17]

इस प्रकार केदार के काव्य में प्रकृति का उद्दीपन रूप मानवमन की भावाभिव्यक्ति का सषक्त माध्यम बना है।

इन उदाहरणों को देखकर यह कहा जा सकता है कि कवि द्वारा उकेरे गए विरह चित्रों में विरही मन की मनःस्थिति तथा प्रेमी के भग्न हृदय की निराषा का मार्मिक वर्णन है। इनमें केदारनाथ ने स्मृति चित्रों को प्रधानता के साथ चित्रित किया है। कवि वैचारिक रूप से साम्यवादी थे परन्तु प्राकृतिक पदार्थ एवं कार्य–व्यापार देखकर वे उनमें ईष्वरीय अंष की परिकल्पना करते थे। सारांषतः कहें तो कवि केदार ने प्रकृति के उद्दीपन रूप में चित्रण के अंतर्गत संयोग और वियोग के चित्रों में एक ओर यौवन की तीव्र उमंग है, तो दूसरी ओर प्रेमी हृदय की विरह–व्याकुलता भी उपस्थित है।

संक्षेप में कहें तो केदार की कविताओं में प्रकृति मुंह बोलती हुई नजर आती है। ये कविताएं भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से इतनी सरल हैं कि पाठक इनके मोहपाष में बंधकर भावुक हो जाता है। मंत्रमुग्ध कर देने वाली इतनी सहज काव्याभिव्यक्ति अन्यन्त्र दुर्लभ है।

केदार द्वारा किए गए प्रकृति चित्रण में कहीं भी कृत्रिमता नहीं है अपितु स्वाभाविकता ही नजर आती है। इन कविताओं में कवि मानवीय सौंदर्य के साथ–साथ प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण करने में सफल रहे हैं। प्रकृति के साधारण से साधारण रूपों को भी कवि ने प्रायः ग्रामीण परिवेष के साथ जोड़कर ही चित्रित किया है। प्रकृति चित्रण में लोकसंपृक्ति का पुट देना केदार की खास उपलब्धि कही जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

[1]युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 9
[2]गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 22
[3]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं, पृ. 20–22
[4]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं, रंग बोलते हैं, पृ. 95
[5]फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 30
[6]फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 29
[7]अग्रवाल केदारनाथ : आत्मगंध, पृ. 147
[8]अग्रवाल केदारनाथ : पंख और पतवार, पृ. 37
[9]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 33
[10]केदारनाथ अग्रवाल : पुष्पदीप, पृ. 36
[11]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 39
[12]केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृ. 62
[13]अग्रवाल केदारनाथ : खुली आंखें खुले डैने, पृ. 86

[14]फूल नहीं रंग बोलते हैं : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 29
[15]गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 76
[16]गुलमेंहदी : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 82
[17]जमुन जल तुम : केदारनाथ अग्रवाल, पृ. 32